Chapter-7

सप्तम् अध्याय

राजनैतिक एवं आर्थिक प्रणाली और वैयक्तिक चेतना

सप्तम् "अध्याय"

"राजनैतिक व आर्थिक परिवेश और वैयक्तिक चेतना साठोत्तर प्रमुख नाटकों के परिपेक्ष्य में"

आमुख :-

द्वितीय अध्याय में यह उल्लेख किया जा चुका है कि राजनीति देश या समाज को शासित और व्यवस्थित करती हुई आर्थिक व्यवस्था को संतुलित बनाती है । राजनीति का अभिप्राय: किसी राजतंत्र अथवा राज्य की नीति तथा राज्य प्रणाली से लिया जाता है और नीति का अर्थ -नेतृत्व, कूटनीति और नैतिक आचरण होते हैं । इस में राष्ट्र तथा समाज के हितार्थ कार्य किये जाते हैं । अत: देशप्रेम, राष्ट्रसेवा , त्याग, प्रजातन्त्र के मूल्य, एकता, मैत्री, सद्भाव तथा सहअस्तित्व आदि राजनैतिक मूल्यों के अन्तर्गत समाहित किये जाते हैं ।

किसी भी देश की राजनीति तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती । न केवल अपने देश में अपितु विश्व के किसी भी क्षेत्र में हो रही हलचल उसे तरंगित अवश्य करती है । 18वीं शताब्दी में अमरीकी महाद्वीप के देश जनतांत्रिक और राष्ट्रीय सरकारें स्थापित कर रहे थे । औद्योगिक तथा वैज्ञानिक विकास के फलस्वरूप नई राजनैतिक चेतना उद्‌भूत हो रही थी । फ्रांसीसियों ने विश्व को आधुनिक जनतंत्र प्रदान किया जिससे व्यक्ति को राजनैतिक अधिकार मिले - जिसमें - भाषण ,लेखन, धार्मिक स्वतंत्रता ,कानून, न्याय रक्षा आदि संवैधानिक अधिकार अस्तित्व में आये । रूसी क्रान्ति ने तो विश्वभर को आलोड़ित किया । इस

क्रान्ति ने विश्व के समस्त मजदूर वर्ग को एकता के सूत्र में पिरोकर स्व अधिकारों के प्रति सचेत किया । "उन्होंने अनुभव किया कि जब तक हमें राजनैतिक स्वत्व न मिलेंगे तब तक हमारे दुख दूर न होंगे ।"[1] इस प्रकार के क्रान्तिकारी विचार न केवल रूस में बल्कि फ्रांस, जर्मन, इंगलैंड आदि अन्य यूरोपिय देशों में विकसित होने लगे[2] पश्चिमी देशों में परिस्थितियोंवश अंकुरित हो रही "वैयक्तिक चेतना" का आलोक विदेशों में प्रवास कर रहे भारतीयों, पाश्चात्य साहित्य तथा अंग्रेजों के सम्पर्क के कारण भारत में भी फैलने लगा । पश्चिमी देशों में व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं महत्ता की प्रतिष्ठा देखकर परतंत्र किन्तु विचारशील कुछ भारतीयों में मुक्ति की कामना तीव्रतर होने लगी । डा0 राम विलास शर्मा के मतानुसार -" इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय क्रान्तिकारियों पर और भारत के स्वाधीनता आन्दोलन पर रूसी क्रान्ति ने गहरा प्रभाव डाला ।"[3] इस प्रकार विश्वभर को आलोड़ित कर रही राजनैतिक व राष्ट्रीय चेतना भारत की परिस्थितियों से प्रभावित हो अपने कई रंग व प्रभाव छोड़ती हुई प्रवाहमान होती रही । जैसा स्पष्ट है कि परतंत्र भारत की राजनीति सोद्देश्य देश भक्ति, त्याग तथा आदर्श युक्त थी । इसलिए गांधी, तिलक, गोखले, नेहरू, टण्डन आदि नेताओं के लिए राजनीति देश कल्याण तथा मानव सेवा की पर्याय थी । इन नेताओं ने अपना सर्वस्व अर्पण कर देश में आदर्श राजनीति का निर्मल स्रोत प्रवाहित किया । भारतवासियों

1- उद्धृत - भारत में अंग्रेज़ी राज और मार्क्सवाद-1 - डा0 रामविलास शर्मा, पृ0-260

2- ,, ,, ,, ,, ,,

3- ,, ,, ,, ,, ,, - पृष्ठ -233

की सुप्त चेतना को झकझोरा और पराधीन देश को मुक्त कराने के लिए भारतीय जनता का आहवान किया। गांधी युग से पूर्व भी अंग्रेज़ी अत्याचार से मुक्ति पाने के लिए युद्ध हुए किन्तु जनता के सहयोग के अभाव में सफल न हो सके । इसीलिए गांधी ने जन-साधारण की शक्ति को पहचान उन्हें आन्दोलन में कूद पड़ने का निमन्त्रण दिया ।

गांधी युग तक राजनीति व्यापक रूप धारण कर चुकी थी । जनता के सहयोग के परिणामस्वरूप नई संभावनायें, आशायें जागृत हो रही थीं । 1905 में बंग भंग, असहयोग आन्दोलन, नमक आन्दोलन आदि इसी राजनैतिक चेतना का परिणाम थे । सन् 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ हो जाने पर भारत देश के जन जीवन में अभूतपूर्व जागृति आई । प्रेस, डाक, रेल आदि की सुविधाओं से साहित्य और समाज में नवीन चिन्तन और दृष्टि कोण पनपने लगे । सन् 1929 में पं0 जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में पूर्ण स्वतंत्रता की मांग की गई 8 अगस्त 1942 को "अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने भारत छोड़ो" आन्दोलन प्रस्ताव पास किया । और 15 अगस्त 1947 को नेताओं व जनता के सहयोग, त्याग, देशप्रेम के सम्मुख अंग्रेज़ी राज्य झुक गया । भारत अपने भाग्य का विधाता स्वंय बन गया इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि स्वतंत्रता से पूर्व की राजनीति चेतना सद्भाव, भाई चारे, त्याग, एकता, देशप्रेम तथा मानवीय मूल्यों की नींव पर आधारित थी । किन्तु ज्यों ज्यों परिस्थितिवश देश में आर्थिक संकट शरणार्थी समस्या, सत्ता लोलुपता आदि प्रवृतियां बढ़ती गईं राजनैतिक चेतना भी अपने विस्तृत दायरे को छोड़ स्वउदर पूर्ति तक सिमट आई ।

जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है कि एक ओर राजनीति ने निम्न वर्ग में चेतना, नारी समानता, ग्रामों का विकास तथा वोट प्रणाली द्वारा व्यक्ति के महत्व को बढ़ावा दिया है वहीं दूसरी ओर राज नीति के भ्रष्ट स्वरूप ने जन साधारण में कुंठा, निराशा, त्रासदी को विकसित कर राजनीति को "घिनौना व्यवसाय" के रूप में स्थापित किया है ।

§1§ सद्य: स्वतंत्र भारत में सीमित साधनों और असीमित समस्याओं के कारण आपाधापी ,गरीबी, मँहगाई, आवास समस्या, अनुशासन हीनता और साम्प्रदायिक भेदभाव ने राजनैतिक गतिविधियों को अत्याधिक प्रभावितकिया । फिर भी पं0 नेहरू व सरदार पटेल जैसे नेताओं से जुड़ो रहने के कारण राजनीति में इतनी विस्फोटक स्थिति उपस्थित नहीं हो पाई थी जितनी कि गत दो दशकों में पैदा हो गई है । पं0 नेहरू ने-पंचशील, गुट निरपेक्ष ,शान्ति व सहअस्तित्व के सिद्धान्तों पर आधारित विदेश नीति अपनाई । किन्तु 1962 में भाई-भाई का नारा लगाने वाले चीन के आक्रमण ने राजनीति को यथार्थ के धरातल पर ला खड़ा किया । राजनीति आदर्श के दायरे से निकल कर स्वार्थता, भाषावाद, क्षेत्रवाद, भाई-भतीजावाद ,जाति वाद आदि अन्य संकीर्ण घेरों में पनपने लगी जिसके फलस्वरूप "वैयक्तिक चेतना" भी प्रभावित हुए बिना न रह सकी । घोर यथार्थ पर आधारित राजनीति धनिकों व गुण्डों का व्यवसाय बन गई है जिसने आदर्शभौतिक चेतना को बढ़ावा दिया । साठोत्तर हिन्दी नाटकों में समकालीन राजनीति को बखूबी उभारा है । नाटकों में जहाँ राज नीति से उत्पन्न "चेतना" को अभिव्यक्त किया है वहीं दूसरी ओर

सत्ता लोलुप तथाकथित राजनीति से उद्भूत तनाव, निराशा व आपाधापी से त्रस्त आम आदमी की मन:स्थिति को भी चित्रित किया है । "कपास के फूल" नाटक गांधी जी के संदेशों से पनप रही आदर्श "वैयक्तिक चेतना" को प्रतिष्ठित करता है । इसके पात्र सरदार, रामू, जमींदार आदि ऊंच-नीच के वैर भाव को भूल कर गांव की उन्नति में एक दूसरे को सहयोग देते हैं । इसीप्रकार "अमर ज्योति" नाटक में आजादी के बाद बढ़ते हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को भाईचारे व सहयोग द्वारा समाप्त कर देशद्रोही को नष्ट करने का आह्वान किया गया है ।

इसके अतिरिक्त पैराणिक कथ्यों के माध्यम से भी सद्य: स्वतंत्र भारत की राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण किया गया है । 'पहला राजा' नाटक अपने पात्रों के माध्यम से तत्कालीन नेताओं का चित्र उपस्थित करता है जो कथावस्तु के द्वारा आजादी के बाद के भारत का रूप मनस पटल पर अंकित कर देता है । इन नाटकों के अतिरिक्त , 'अंधेरे का बेटा', 'नेफा की एक शाम', आदि नाटकों में राजनीति, देशप्रेम, त्याग पर आधारित राजनीति चेतना परिलक्षित होती है ।

§2§ समकालीन राजनीति और वैयक्तिक चेतना :-

जैसाकि इस अध्याय के प्रारम्भ में कहा जा चुका है कि स्वतंत्रता के कुछ समय उपरांत तक राजनीति आदर्शयुक्त व्यावहारिकता लिए हुए थी ,जो विभिन्न समस्याओं व परिस्थितियोंवश सन् सातवें दशक तक आते-आते यथार्थ और भौतिक चेतना से सम्पृक्त होती गई ।

साठोत्तर युगीन परिवेश में निरन्तर बढ़ रही मँहगाई, बेरोज़गारी जनसंख्या वृद्धि, शिक्षा के गिरते स्तर तथा सत्ता प्राप्ति की होड़ ने राजनैतिक मूल्यों को विकृत कर दिया । यद्यपि स्वाधीन भारत में बहुआयामी विकास हुआ है ,विदेशों में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ी है किन्तु यह भी सत्य है कि देश में उत्पन्न अन्य अनेक समस्यायें ज्यों की त्यों बनी हुई हैं।

समकालीन युग राजनीति का युग है । आजाद भारत के संवैधानिक अधिकारों ने जन साधारण को राजनीति के समीप ला खड़ा किया है । यही कारण है कि आज राजनीति आम आदमी की चर्चा का विषय बन चुकी है । इस "राजनीति मय" परिवेश ने वैयक्तिक चेतना को व्यापक रूप से प्रभावित कर उसे नये चिन्तन व नये दृष्टिकोणों से जोड़ा है । एक ओर जहां निम्न वर्ग में अपने अस्तित्व व स्वअधिकारों के प्रति भाव बोध जागृत हुआ है, गाँवों की दशा को सुधारा गया है वहीं दूसरी ओर वह उच्च वर्ग की विलासिता की वस्तु भी बन कर रह गई है और आज का नेता निम्न वर्ग की भलाई की आवाज बुलन्द करता हुआ विलासी, ऐय्याशी व धन लोलुप बन गया है । धन के बल पर जनता व शासक दोनों को खरीद रहा है । कानून का उपयोग अपने हित के लिए कर रहा है । समकालीन युग का नेता धन की थैलियों में बिक रहा है और इन थैलियों में बिक रही है आदर्श व नैतिकता की सीमाओं को तोड़ती राजनीति ।"जीवन में कोई अनुशासन नहीं रह गया और देश के व्यापक हित के स्थान पर स्वार्थ एवं स्वरति का प्राधान्य हो गया । पुराने नेता विलासी ,ऐय्याश और धन लोलुप बन गये ।"[1] आधुनिक युग की राजनीति त्याग,देश सेवा ,

---

1- द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास- डा0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय-पृ0-19

परोपकारके आधार स्तम्भ छोड़कर गुण्डागर्दी, अवसरवादिता, भाषा वाद व धनको थैलियों पर टिकी हुई है । "आज की अवसरवादिता, स्वरति, स्वार्थान्धता और गैर ईमानदारी ने एक गहरी अव्यवस्था, उत्पन्न कर दी है ।"[1] इस भ्रष्ट राजनीति से आधुनिक व्यक्ति सर्वाधिक त्रस्त है । नौकरशाही, अवसरशाही ,पुलिस, कानून यहाँ तक कि देश का प्रत्येक पहलू में आज राजनीति छा गयी है । देश की छोटी से छोटी घटना राजनीति से जुड़कर "जनता" को गुमराह करने का मोहरा बन जाती है । युवा पीढ़ी सही नेतृत्व के अभाव में दिक् भ्रमित हो अपनी शक्ति व बुद्धि का दुरूपयोग हिंसात्मक कार्यो तथा विध्वंसात्मक कार्यो के रूप में कर रही है । वास्तव में आज चरित्र वान् कोई ऐसा नेता नहीं है जो जनता विशेष रूप से युवा पीढ़ी में राजनीति के प्रति विश्वास जमा सके । देश की भ्रष्ट, आपाधापी से युक्त राजनीति से त्रस्त आशाओं, निराशाओं जागृति एवं विकृति का यथार्थ ब्यौरा साठोत्तर हिन्दी नाटकों में अत्याधिक दृष्टिगोचर होता है --

जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है कि आधुनिक राजनैतिक युग में ग्राम्य जीवन में भी नवीन चेतना व स्व अस्तित्व बोध की लहर आ गई है । क्या किसान, क्या मजदूर, क्या साधारण जनता सभी अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गये हैं । ग्रामीण युवा वर्ग विशेष रूप से उत्साही और जागृत हुआ है । "कपास के फूल" में रामू कहता है -"काहे के जमींदार ,सब अपने घर के राजा हैं । पंचायत का राज है । अब तो वे दिन हवा हुए जब पसीना गुलाब था ।"[2] राजनैतिक

1- द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास- डा0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय-पृ0-16

2- कपास के फूल - जगदीश चतुर्वेदी - पृ0-58

चुनाव प्रणाली ने शहर से गाँव तक विषैला वातावरण बना रखा है । हमेशा से शान्त, स्थिर रहने वाले गाँवों में अबबेचैनी और तनाव का वातावरण फैलता जा रहा है । गाँवों में जहाँ सामूहिकता तथा बुजुर्गों के प्रति आदर भावना, आदर्श तथा नैतिकता बनी रहती थी, वहाँ युगीन राजनीति ने नई वैचारिकता एवं वैयक्तिकता को जन्म देकर इस भावना को ह्रासोन्मुख किया है । "बुजुर्गों में सामूहिकता की कमी को बढ़ावा देने में पंचायती चुनावों ने भी काफी योग दिया है ।"[1]

राजनीति से व्याप्त चहुं ओर के इस वातावरणका चित्रण समकालीन नाटकों में अत्यधिक तीखे व पैने ढंग से किया जा रहा है 'आज नहीं तो कल', 'सिंहासन खाली है', 'शुतुरमुर्ग', 'राम की लड़ाई', 'भस्मासुर', 'नागपाश', 'कथा एक कंस की', 'एक गधा था उर्फ अलादाद खाँ', 'अंधों का हाथी', 'पहला राजा', 'बकरी', आदि नाटक बखूबी बदले राजनैतिक तेवरों का यथार्थ चित्रण करते हैं । डा० लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक समकालीन राजनैतिक विसंगतियों को सटीकता से उभारते हैं । "कलंकी" नाटक में गणतन्त्रीय प्रावधानों की प्रतीक्षा में शक्तिहीन व ज्योतिहीन हो रही पीढ़ी का चित्रण करता है । "सूखा सरोवर" लोकतांत्रिक मूल्यों में उपस्थित हो रहे विघटनकारी तत्वों को उद्घाटित करता है । 'पंच पुरुष' और 'राम की लड़ाई' नाटक चुनावी दंगल और ग्रामीणजनों के प्रति हो रहे राजनैतिक अत्याचारों का पर्दाफाश करते हैं । समकालीन स्वार्थयुक्त और आपा धापी की भ्रष्ट राजनीति ने चुनावों को लोकतांत्रिक पद्धति नहीं अपितु स्वार्थपूर्ति हेतु डाकाजनी बना दिया है । "राम की लड़ाई" में

1- हिन्दुस्तान - (6 मई 1984) सं0 श्रीमती शीला झुनझुनवाला

विमला कहती है -" वह एक एक को डांटते फटकारते रहे - यह आजादी नहीं, गुलामी है । यह मतदान नहीं डाकाजनी है । भारत माता का श्राप लगेगा । सारे गांव जवार से कह दिया कि जब चुनने को कुछ नहीं है तो चुनाव किसका । उसी रात मेरे साधू पिता की हत्या -----।"[1] चुनाव व्यवस्था ने समाज की सामूहिकता, त्यौहारों आदि को भी प्रभावित किया है नेताई के शब्दों में -आप समझते नहीं । इलेक्शन का असर हर चीज़ पर है । हर चीज का असर इलेक्शन पर है ।"[2] इसी कारण गांव का उत्साह उल्लास समाप्त होता जा रहा है । "सुनो -पंचों सुनो । गपोले पांडे जो परसुराम बनने वाले थे उन्हें नेताई ने फोड़ लिया । कहा- ओ गपोले ,यही वक्त है साफ कह दो जनक - और विश्वामित्र से - ग्राम पंचायत चुनाव में अगर सारा गांव वोट दे मुझे, तभी परसुराम का पार्ट करूंगा,हां, नहीं तो ।"[3]

चुनाव प्रणाली ने देश में आर्थिक विषमता तथा पूंजीवाद को बढ़ावा दिया है । "वाह रे इन्सान" नाटक का सेठ सम्पत राय थैली में बिकने वाले नेता के लिए कहता है --"बस, बस । रहने दो अपनी फिलासफी ( ) को । हूं । ---- उनको इलेक्शन ( ) के लिए टिकटसम्पत राय दिलवाता है अगर चुनाव में जीत होती है तो सम्पत राय के बलबूते पर । इलेक्शन का चंदा - इक्ट्ठा करने के लिए वो सम्पतराय की डयोढी पर घंटों खड़े रहते हैं, और तुम मेरे ही सामने उन्हें देवता बता रहे हो ।"[4] जनता अपने

1- राम की लड़ाई - डा० लाल - पृ० -32

2 ,, ,, ,, ,, पृ० -43

3 ,, ,, ,, ,, पृ०- 19

4- वाह रे इन्सान - रमेश मेहता - पृ०-101

प्रतिनिधि को चुनकर नेता बनाती है किन्तु समकालीन नेता अपने व्यक्तिगत स्वार्थ हेतु देश कल्याण व समाज सेवा को त्याग कर दल बदलू बन जाता है । अर्थात् जिधर हवा देखते हैं उधर खिसक जाते हैं । अत्याचार के प्रति विद्रोह करने वाले विरोधी लाल सत्ता प्राप्ति हेतु सुबोधी लाल बन जाते हैं ।[1] "राम की लड़ाई" में मसखरा कहता है --"मतलब यह है कि आज से चालीस साल पहले आप ही इस गांव में तिरंगा झंडा लेकर आये । पांच साल बाद समाज वादी झंडा लाये और तिरंगे झंडे को उलटाकर झोला सिला लिया । फिर तीन साल बाद लाल झंडा लाये और समाजवादी झंडे से जूता साफ करने लगे ।[2] "भस्मासुर" नाटक में दलबदलू नेता पर व्यंग्य करते हुए कहा है -" ये देखो····· ये जो सफेद टोपी लगाये हुए हैं ना ···· ऋ अभी उधर से जायेगा तो हरी टोपी लगाए होगा···· फिर उधर से लौटेगा तो सफेद टोपी लगाये होगा ·· फिर इधर से जायेगा तो भगवी टोपी···· फिर ··· ये तब तक टोपियां लगायेगा उतारेगा , जब तक मंत्री नहीं हो जायेगा ।"[3] मतलब यह है कि सम कालीन नेता मानवतावादी भावना से प्रेरित होकर देश व जनता की सेवा नहीं करता अपितु धन प्राप्ति हेतु राजनीति में भाग ले रहा है और उसकी सारी उठा पटक और दल-बदलने की इतिश्री कुर्सी प्राप्त होने पर समाप्त हो जाती है । इसे पूर्व वह टोपी बदलने के साथ साथ जनता में साम्प्रदायिकता, धर्म, भाषा व क्षेत्रवाद के कांटे बोकर अपना उल्लू सीधा करता रहता है । समकालीन नेता का प्रतीक चाचा कहता है -"····· सीट खाली कर दूं ···· जनता में फूट

1- शतुरमुर्ग - ज्ञान देव अग्निहोत्री - पृ०-33

2- राम की लड़ाई - डा0 लाल - पृ0-30

3- भस्मासुर - डा0 रामकुमार भ्रमर -पृ0-27

4- तू-तू - सदासिंह आस्थानन्द - पृ0-47

पैदा कर दूं या जात-पांत से काम लूं ? कुर्सी पाने का सबसे बड़ा शास्त्र तो यही ...... ।"[1] नेतागण अपने वोट की चिन्ता में लगे हैं । जनता की कोई चिन्ता नहीं । चाचा कहता है -"नेता लोग कहते आये हैं, गरीब मरे तो पाप नहीं लगता, वोट कम हो जाता है । अगर अपने को "हाई" यानी ऊंचा बनाना चाहते हो तो दूसरों का हक छीन लो । दूसरों के अरमान कुचल दो । गला घोंट दो ।"[1] नेता वोटप्राप्ति हेतु साम्प्रदायिक भावना का राज नीति मोहरे के रूप में उपयोग कर समाज में विष वपन कर रहे हैं । "भस्मासुर" नाटक में स्वार्थी नेताओं की भ्रष्ट राजनैतिक चालों को पर्दाफाश करते हुए कहा है -

सैक्रेटरी - (डायरी खोलते हुए) इधर तीन माह तक तो आप बिलकुल बुक हैं साहब ॥ कल जमशेदपुर पहुंचना है - हिन्दूओं को यह बताने कि मुसलमान तुम पर हमला करने वाले हैं और मुसलमानों को यह बतलाने कि बचो, हिन्दू तुम्हें मार डालेंगे -----"[2] चुनावों के समय दंगे-फसाद का सहारा लेकर जीतना आम बात हो गई है । "भस्मासुर" में नेता जी कहता है -" अरे दंगा-फसाद तो अपने बाएं हाथ का खेल है ।"[3] ~~कुककुके~~ आज नहीं तो कल" नाटक में नेता की स्वार्थपूर्ति को व्यंग्य द्वारा उद्घाटित किया है - हरिजन समस्या इस देश की सबसे बड़ी समस्या है और एक महत्वपूर्ण कुंजी है सत्ता

1- तू-तू - सदासिंह आस्थानन्द - पृ0-23

2- भस्मासुर - राम कुमार भ्रमर - पृ0- 35

3- भस्मासुर - " " - पृ0- 60

में बने रहने के लिए ••• इसलिए सुबह शाम हरिजनों का नाम जपो •••• हरि मिल जायेगा ••• जन की परवाह मत करो ।"[1] "राम की लड़ाई " नाटक में धूर्त्त नेता तथा उसके साथ मिले धनी वर्ग द्वारा लोकतांत्रिक मूल्यों के हनन पर प्रकाश डाला है । "नेताई- वाह , वाह । ऐसा इलेक्शन फिर कभी नहीं आयेगा।

शाह जी - एक बूथ की लुटाई में पांच हजार रूपये ।"[2]

इस प्रकार समकालीन नेता येन-केन-प्रकरेण कुसी प्राप्ति में लगा है । देश व जनता का हित उसके अपने हित के समक्ष नगण्य सिद्ध हो गया है । गणतंत्रीय मूल्य स्व उदर पूर्ति के भार से दबे जा रहे हैं । नेता नित नये नारे, झूठे आश्वासन रचकर जनता को मूर्ख बना कर भोग विलास में लीन हो रहा है । "भस्मासुर " में इस तथ्य को उद्घाटित किया है -" दूत- तब नेता जी को तो जरूर जानते होंगे ? §खुश होता है§ पुरूष - हां, हम लोग तो जानते हैं , पर वह हमें नहीं जानते । दूत- कहों दिखे ? किधर हैं ?
स्त्री - §भोलेपन से§ ढाई साल पहले दिखे थे साहब •••••
पुरूष - उससे पहले हमेशा , हर पांचवें साल दिखते थे।"[3]

इस नाटक में नाटककार ने व्यंग्यात्मक शैली द्वारा नेता की स्वार्थवृत्ति को उद्घाटित किया है - " •••• और जहां तक रेस की बात है हर चुनाव में जीतने के बाद हमारी और जनता की हमेशा रेस चलती रही है ••••• कन्टीन्यू •••• पांच पांच साल तक । पर हम पकड़ में कभी नहीं आये ।तुम भी लगा लो रेस ।"[4]

1- आज नहीं तो कल - सुशील कुमार सिंह - पृ0-18
2- राम की लड़ाई - डा0 लाल - पृ0-21
3- भस्मासुर - राम कुमार भ्रमर - पृ0- 29
4- ,, ,, ,, पृ0- 52

राष्ट्रीय आजादी के बाद जिस स्वराज्य की कल्पना भारत-वासियों ने की थी उसे भ्रष्ट राजनीति ने तोड़ दिया है । सामन्त शाही का पतन तो हो गया किन्तु समकालीन नेता सामन्तशाही का ही आधुनिक संस्करण है । जिसकी छत्रछाया में पूंजीपति,तस्कर तथा गुण्डे निश्चिंत पल रहे हैं । या कहें कि अधिकांश चरित्रहीन पूंजीपति ही नेताओं की कृपा दृष्टि के कारण अपने "काले धन" को "सफेद धन" में परिवर्तित कर धर्मात्मा बने हुए हैं । इस प्रकार आज की भ्रष्ट राजनीति देश की आर्थिक व्यवस्था तथा अर्थ संतुलन को व्यापक रूप से प्रभावित किये है । आज धन और राजनीति एक दूसरे की पूरक बन गयी हैं ।

§4§ आर्थिक विषमता :-

पूर्व विवेचन में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि राजनैतिक एवं आर्थिक प्रवृत्तियों ने "वैयक्तिक चेतना" को प्रभावित करनेवाली अनेक प्रवृत्तियों की सृष्टि की । समकालीन युग अर्थ प्रधान युग है । इसीलिए संसार के सभी राष्ट्रों के कार्यकलाप, राजनैतिक एवं सामाजिक गतिविधियां आर्थिक प्रतिक्रिया से प्रभावित रहते हैं । अर्थात् किसी भी देश का ढांचा "अर्थ" के मजबूत स्तम्भों पर ही टिका रहता है ।

सन् 1947 में जब भारत देश सदियों की गुलामी से मुक्त हुआ तब वह आर्थिक दृष्टि से पराधीन था । तत्कालीन नेताओं के सामने भारत की आर्थिक दशा को सुधारने का कार्य अत्यंत दुष्कर था जिसे शरणार्थियों की समस्या ने और भी अधिक जटिल बना दिया । आज

भी भारत की आधी से ज्यादा जनता गरीबी का सामना कर रही है । जो अधिकतर गांवों में निवास कर रही है । इसीलिए गांधी जी ने भारत की आर्थिक दशा को सुदृढ़ बनाने के लिए गांवों को आर्थिक रूप से निर्भर बनाने पर विशेष बल दिया । उनका मतथा कि लघु व कुटीर उद्योग धंधों के अधिकाधिक विकास के द्वारा ही भारत को विकसित किया जा सकता है । जबकि पं० नेहरू बड़े बड़े उद्योग धंधों तथा कल-कारखानों की स्थापना पर जोर देकर भारत की उन्नति के पक्ष में थे । चूंकि भारत कृषि प्रधान देश है इसलिए तत्कालीन नेताओं ने कृषि विकास पर भी विशेष ध्यान दिया गया। देश के इसो सर्वागींण उत्थान हेतु पंचवर्षीय योजनाओं को लागू किया गया । इन योजनाओं के अन्तर्गत कृषि विकास, लघु व कुटीर उद्योगों के उत्थान, शिक्षा का प्रचार, ग्राम सुधार आदि कार्यों के साथ साथ गरीब व लघु किसानों को ऋण की व्यवस्था करना, बंधुआ मजदूरों को महाजनों के चंगुल से निकाल कर शोषण मुक्त किया । इससे जहां एक ओर दलित मजदूरों तथा छोटे किसानों का उत्थान हुआ वहां दूसरी ओर सामन्ती जीवन तथा धन के असमान वितरण को धक्का लगा । इस प्रकार इन योजनाओं का मुख्य उद्देश्य था कि -" अधिक से अधिक बचत के साथ और निर्धारित समय के भीतर कृषि, उद्योग , सिंचाई,बिजली ,शिक्षा,परिवहन , यातायात के साधन, आवास, स्वास्थ्य ,बेकारी की समस्या, वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास ,भूमिहीनों में भूमि का वितरण, गरीबी हटाने आदि क्षेत्रों में संगठित प्रयास द्वारा साथ ही अर्थशास्त्रियों , उद्योगपतियों, किसान एवं मजदूर संस्थाओं और सर्वोपरि जन सहयोग द्वारा कार्य सम्पन्न हो ।"[1]

1- द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय-19.

और भारत को इन पंचवर्षीय योजनाओं ने सफलता के शिखर की ओर अग्रसर किया है । ग्रामों में बैंकों की स्थापना, ऋणों की व्यवस्था आर्थिक विकास के लिए चलायी गयी सहकारी समितियों आदि ने कृषि प्रणाली को तो सुधारा ही साथ ही साथ ग्राम्य जीवन में नवीन चेतना की ज्योति को भी प्रज्वलित भी किया । देश के आर्थिक ढाँचे को मजबूत बनाने के लिए लघु और विशाल कारखाने स्थापित किये गये । और इस औद्योगीकरण एवं वैज्ञानिक विकास ने अर्थ व्यवस्था को नये आयाम तथा आर्थिक प्रणाली में बहुविध परिवर्तन किये ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जब भारत की बागडोर देश के नेताओं के हाथ में आ गयी तो पं0 नेहरू ने औद्योगिक विकास को ध्यान में रखते हुए सन 1951-56 के अन्तर्गत लागू की गई । सन् 1956-61 में द्वितीय पंचवर्षीय योजना बनी और तीसरी 1961-66 की अवधि में प्रारम्भ की गई, जो चीन व पाक के आक्रमणों के कारण सफल नहीं हो पाई । जो धन राशि देश के विकास कार्यों हेतु व्यय करनी थी वह युद्ध तथा देश की सुरक्षा पर व्यय की गयी । इस योजना की असफलता ने बेरोजगारी, मंहगाई, वस्तुओं का अभाव तथा आर्थिक विषमता आदि समस्याओं को और भी अधिक जटिल बना दिया । धनाभाव ने चौथी पंचवर्षीय योजना को भी प्रभावितकिया । यह योजना 1967 में प्रारम्भ होनी थी लेकिन वह 1969 से 1974 तक लागू हो पाई । इसी बीच 1971 मे "बंगला देश मुक्ति" युद्ध ने पुन: आर्थिक संकट उपस्थित कर दिया । बंगला देश से आये ~~शरणार्थि~~ शरणार्थियों से आवास समस्या और खाद्यान्न समस्या विकट हो गई । इसलिए इस योजना को भी आशातीत सफलता नहीं मिल पाई ।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना 1974 से 1979 के दौरान प्रारम्भ हुई इस बीच कांग्रेस सरकार के पतन और "जनता सरकार" के सत्ता में आने और पुन: पतन होने - इन गतिविधियों ने राजनैतिक मूल्यों के ह्रास के साथ साथ दो बार हुए आम चुनावों से उद्भूत मँहगाई व वस्तु अभाव ने गरीबी से त्रस्त जनता की कमर तोड़ दी । देश में जहाँ एक ओर तस्करी, जमाखोरी, काला बाजारी, भ्रष्टाचार व्याप्त था वहीं बढ़ती जनसंख्या, मँहगाई और बेरोज़गारी सुरसा की तरह मुँह फैलाने लगी जिसने जनता की आशाओं, कल्पनाओं तथा इच्छाओं को निगलना शुरू कर दिया । देश की छठी पंचवर्षीय योजना 1979 में प्रारम्भ हुई जो असफल रही, जिसे पुन: 1981 में प्रारम्भ किया गया । यह कहना अन्याय होगा कि इन योजनाओं से देश को कुछ लाभ नहीं हुआ । आजादी के बाद के 36-37 वर्षों के इस अन्तराल में देश ने उन्नति के कई पड़ावों को प्राप्त कर विश्व में अपना गौरवशाली स्थान बनाया है। आज हमारे देश में -सुई जैसी छोटी वस्तु से लेकर उपग्रह तक के सारे उपकरण ,मशीन जैसी बड़ी वस्तुएं बनाई जा रही हैं । विज्ञान के क्षेत्र में भारत ने अभूतपूर्वक सफलता प्राप्त की है । और कृषि में निरन्तर विकास करते हुए खाद्यान्न में काफी सीमा तक आत्मनिर्भर बन रहा है । इसप्रकार भारत में जो चहुँमुखी विकास दृष्टिगत हो रहा है वह इन पंचवर्षीय योजनाओं रूपी वृक्ष के ही फल व फूल हैं । किन्तु इतना अवश्य है कि इन योजनाओं से जितना लाभ मिलना चाहिये था उतना नहीं मिल पाया । अनेक अन्तर्बाह्य कारणों से आशातीत सफलता नहीं मिल पाई । युद्धों के अतिरक्त नैतिक चरित्र, दृढ़ता की कमी तथा स्वार्थ भावना, धन

चेतना से प्रभावित वैयक्तिक-चेतना ने निम्न वर्ग में अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न की है । "दरिन्दे" नाटक में निम्न वर्ग के प्रतीक शेर, भालू, लोमड़ी आदि आदमी जो उच्च वर्ग का प्रतीक है, के अत्याचारों के विरूद्ध आवाज बुलन्द करते हैं । "मेरे विचार में हम सब को एक यूनियन बनानी चाहिये । जानवर यूनियन । लड़ने के लिए ।"[1] वे क्रान्ति द्वारा अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए उद्यत हैं । रोटी कपड़े के लिए, रहने के लिए मकान के लिए और आत्मसम्मान हेतु बराबरी का दर्जा पाने के लिए उनको पूर्ण विश्वास भी है कि -"सब को बराबरी का दर्जा मिलेगा ।"[2] स्वतंत्र भारत की जनता अपने अधिकारों, अपनी जरूरतों को अधिकार पूर्वक माँग रही है -

" ले के रहेंगे - अपने अधिकार ।
बदल के रहेंगे - यह सरकार ।

वोट प्रणाली ने जन साधारण को देश निर्माण का असाधारण अधिकार दिया है । जनता इसका उपयोग अपने हित में करती है लेकिन भ्रष्ट राजनीति ने अपने दाँव पेचों में वोटप्रणाली को सशक्त मोहरा बना लिया है । आज उम्मीदवार और मतदाता दोनों ही पाँच पाँच रूपये में बिक रहे हैं । यहाँ तक कि रास्ते की बाधा साफ करने केलिए हत्या तक कर डालना मामूली सी बात हो गई है । - "उस दिन सुबह से तीनों पार्टियों के लोग झोले में रूपये, पिस्तौल, हथगोला

1- दरिन्दे - हमीदुल्लाह - पृ0 21
2- ,, ,, पृ0 37

भरे पिता जी पास आते रहे । इस तरह से दबाव डालकर अपने हक में वोट लेने के लिए "[1] और जब "वह एक एक को डांटते फटकारते रहे - यह आजादी नहीं, गुलामी है । यह मतदान नहीं, डाकाजनी है । भारत माता का श्राप लगेगा सारे गांव जवार से कह दिया कि जब चुनने को कुछ नहीं है तो चुनाव किसका । उसी रात मेरे पिता साधू की हत्या ------।"[2] आज का नेता, देश सेवा, त्याग,जन कल्याण आदि में विश्वास नहीं रखता । उसने नैतिकता को उतार फेंका है - "(वह कर्महीन है भगवान् । - - - परम दुष्ट है) यह असत्य संभाषण करता है , विश्वासलेता है, आश्वासन देता है, दल तोड़ता है । यह आपकी तरह चक्र-सुदर्शनधारी नहीं है प्रभु, पर यह नोटधारी है । वोट धारी है । यह नोटऔर वोट से सत्ता में आता है ।तमाम छली और षड्यन्त्रकारी जन इसके मित्र हैं ।"[3] स्वार्थी नेता समाजवाद ,लोकतंत्र, साम्यवाद का नारा लगाते हुए देश को बरबाद कर रहा है । वे जातिवाद, वर्गवाद, भाषावाद और साम्प्रदायिकता को छिछली राजनीति में मोहरे के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं । हमारे उस देश को नष्ट कर रहे हैं - जिसको -"हमारे देशभक्त वीरों ने, स्वतंत्रता सेनानियों ने अपने रक्त की बूंदों से सींच कर इस धरती पर स्वतंत्रता,समता और न्याय के कमल खिलाये थे, उसे आज हमारे नेताओं, की क्षुद्र स्वार्थ भावना और सत्ता लिप्सा ने अपने पैरों तले रौंद डाला ।"[4] लेकिन ऐसा नहीं कि जनता इस

1- राम की लड़ाई - डा0 लाल - पृ0-32

2- " " " " " "

3- भस्मासुर - राम कुमार भ्रमर - पृ0 20

4- एक और अभिमन्यु - रामगोपाल गोयल - पृ0-31

राजनैतिक अन्याय अथवा भ्रष्टाचार से अनभिज्ञ है । वह इन स्वार्थी नेताओं के माया जाल से पूर्णत: परिचित है फिर भी सत्ता व धन के आगे विवश है । बुद्धिजीवी वर्ग सब कुछ जानते समझते हुए भी मौन है और निम्न वर्ग अनपढ़ साधनरहित होने के कारण निरीह है अत्याचार को सहने पर विवश है । किन्तु फिर भी राख में दबी चिनगारी की भाँति भ्रष्ट राजनीति के प्रति विद्रोह की चेतना झलक जाती है । "----- जब तक तुम लोग अधिनायकतंत्र का विरोध नहीं करोगे, अपनी आवाज नहीं उठाओगे और बिना पेंदी के लोटों की खनखनी नारेबाजी में विश्वास करते रहोगे तब तक तुम लोगों का उद्धार नहीं, निष्कृति नहीं ।"[1] स्वार्थपूर्ण राजनैतिक नेतृत्व को "शुतुरमुर्ग" के प्रतीक से व्यक्तकरते हुए श्री ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने तन्त्र के भ्रष्टचार का पूरा और सही खाका खींचा है । सिंहासन खाली है" नाटक में समस्त राजनैतिक हथकण्डों को अनावृत किया गया है । "आज नहीं तो कल" नाटक में नाटककार ने "पुरूष पात्र" के माध्यम जनता के आक्रोश को व्यक्त किया है -"हम साले बन्दरों की औलाद ..... हमारी गर्दनें मदारियों की रस्सी में बंधी रहेंगी --- वह डुगडुगी बजायेगा और हम नाचेंगे --- यही हमारी --- नियति है -- मदारी डमरू बजायेगा - बन्दरिया नाचेगी --- मदारी छड़ी जमायेगा -- बन्दर कलाबालियाँ खायेगा --- यही हमारी नियति है ---"[2] युवा पीढ़ी इन स्वार्थी नेताओं की भ्रष्ट राजनीति से अत्यधिक असन्तुष्ट व आक्रोशित है । आपाधापी ,भाई भतीजावाद के इस राजनैतिक युग

1- सम्भवामि युगे -युगे - जि0जे0 हरिजीत - पृ0-48
2- कल आज और कल - सुशील कुमार सिंह - पृ0 31

में उनकी प्रतिभायें कुंठित हो रही हैं । बेरोज़गारी के कारण शक्ति का दुरूपयोग हो रहा है । फलत: युवा पीढ़ी उत्तेजित हो चीख पड़ती है --" युवक (चीख कर) - लानत है .... लानत है .... हमारा खून ... हमारा शरीर..... हमारी जवानी क्या इसीलिए है कि हम उन बूढ़े मरगिल्ले लेकिन चालाक भेड़ियों को अपने कंधों पर ढोते फिरें और वे हमारी गर्दनों में अपने नुकीले दांत फंसाये हमारा खून पीते रहें ?"[1] युवा पीढ़ी जमींदारी प्रथा से परिवर्तित रूप तथाकथित प्रजातंत्र के स्थान पर समाजवाद लाने को उद्यत है - "युवक (चीखकर) नही ..... अब और नहीं । बिलकुल नहीं .... हम तुम्हें नही ढोयेंगे ..। हमारे कंधे अब तुम्हारी अरथी पर ही लगेगें ... लाल रंग आयेगा ... और जरूर आयेगा ।"[2]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि स्वतंत्रता के पश्चात् जब विविध क्षेत्रों में नवीन संभावनाओं के द्वारर खुले और चिरप्रतिक्षित आशाओं-आकांक्षाओं के पूर्ण होने के अनन्त अवसर प्राप्त होने लगे तो देश में नया वातावरण निर्मित होने लगा । संवैधानिक अधिकारों जमींदारी उन्मूलन, देश कल्याण की विभिन्न योजनाओं नारी शिक्षा व समानता आदि विचार धाराओं ने नव जागरण के स्वर को गुंजित किया । लेकिन इसके साथ साथ राजनैतिक का स्वार्थान्ध युक्त घिनौना रूप भी उभर कर सामने आया है ,जो जनता के अंधविश्वासों, जातिगत, भाषावाद, क्षेत्रवाद धार्मिकता को राजनैतिक क्षेत्र में उछाल कर देश को जड़ों को अन्दर ही अन्दर खोद रहा है । नाटककार इन

1- कल आज और कल - सुशील कुमार सिंह - पृ0- 32

2- वही वही पृ0 - 40

समस्त विषमताओं, जटिलताओं के बीच से अपनी अनुभूति यात्रा तय करता हुआ, अपने अनुभवों को नाटक में स्वर प्रदान करता हुआ जनता को जागृत कर रहा है । भ्रष्ट राजनीति के हथकण्डों का पर्दाफाश कर रहा है ।

{1} चुनाव प्रणाली एवं दलगत नीति :-

जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है कि सन 1947 से पहले की राजनीति त्याग, देश, प्रेम, सेवाभाव आदि पर आधारित थी । इस का कारण था । देश दासता के बन्धनों से मुक्त होने को व्याकुल था इसीलिए भारतवासी एकजुट होकर भारत की स्वाधीनता के लिए संघर्षशील थे । लेकिन उस समय भी राजनीति वैचारिक मतभेदों के कारण "नरम दल" और "गरम दल" इन दो दलों में विभक्त हो गयी थी । किन्तु देशहित व देश की स्वतंत्रता प्राप्ति ही इन दोनों दलों का उद्देश्य था जिसमें स्वार्थ पूर्ति के लिए कोई स्थान न था । लेकिन अंग्रेजों की "फूटडालो" नीति ने अपना असर दिखाया, जिससे कांग्रेस पार्टी में सक्रिय भाग ले रहे मुस्लिमों के मन में संदेह का बीज वपन हुआ और उनकी स्वतंत्र पार्टी "मुस्लिम लीग" की स्थापना हुआ । इस पार्टी का गठबंधन जातीयता के संकीर्ण घेरों पर आधारित था जिसने सन् 1947 में देश का विभाजन भी कराया ।

स्वतंत्र भारत में दलगत राजनीति सक्रिय होती चली गई । जिसका एक मुख्य कारण था - प्रत्येक भारतीय नागरिक को राजनीति में सक्रिय भाग लेने तथा वोट डालकर अपना नेता चुनने का अधिकार प्राप्त होना । इस चुनाव प्रणाली ने जन मानस को राजनीति से तो जोड़ा ही साथ साथ ही राजनैतिक दलों की संख्या में वृद्धि भी की ।

जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है कि कांग्रेस पार्टी ने देश को आजाद कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और इस पार्टी के कर्णधारों, गांधी, नेहरू, पटेल आदि नेताओं ने राजनीति को आदर्श एवं नैतिक मूल्यों से जोड़े रखा जिसके परिणामस्वरूप जनता का राजनीति के प्रति अगाध विश्वास एवं आदर की भावना निहित थी । लेकिन समस्याओं से घिरे स्वतंत्र भारत में राजनीति खिलवाड़ व स्वार्थ बनती चली गई ।

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं० नेहरू निर्दलीय नीति के पक्ष में थे, लेकिन विडम्बना थी कि उन्हीं के विरोधी में अन्य अनेक दलों का गठन होने लगा । राजनैतिक मतभेदों के कारण राजर्षि टण्डन ने कांग्रेस पार्टी से त्यागपत्र दे दिया । आचार्य कृपलानी ने भी कांग्रेस दल से अलग होकर " किसान मजदूर प्रजा पार्टी" का गठन कर राजनीति में सक्रिय भाग लिया । 1948 में आचार्य नरेन्द्र देव व जयप्रकाश नारायण ने "सोशलिस्ट पार्टी" का गठन किया । इस समस्त दलों के अस्तित्व में आने के बाद भी 1952 में हुए प्रथम आम चुनावों द्वारा भारतीय जनता ने कांग्रेस पार्टी को सत्ता में ला कर उसके प्रति अपनी आस्था को प्रकट किया । परन्तु कांग्रेस दल के अन्दर अलगाव वादी भावना सुलगती रही - जो 1959 में चीन व तिब्बत के मुददे को लेकर भड़क उठी । नेताओं ने पं० नेहरू के प्रति अनास्था प्रकट की । फलत: 1961 तक - कांग्रेस किसान मजदूर मजदूर पार्टी, समाजवाद, साम्यवाद और जनसंघ - ये चार दल राजनैतिक धरातल पर उभर कर सामने आये ।

सन् 1977 में आपातकालीन स्थिति के पश्चात् कांग्रेस पार्टी के पतन के साथ ही दलीय राजनीति में अन्य अनेक दलों का आगमन

हुआ । कांग्रेस दो दलों कांग्रेस {इन्दिरा} और कांग्रेस {अर्स} में विभक्त हो गयी । जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में "जनता पार्टी" का उदय हुआ - जिसके ढाई वर्ष पूरे होते होते - लोकदल { चरण सिंह के नेतृत्व में} और भारतीय जनता पार्टी { अटल बिहारी वाजपेयी} के नेतृत्व में } के रूप में विभाजित हो गई । इसके अतिरिक्त - ए0एम0डी0के0 ,भारतीय क्रान्ति दल, लोकतंत्रिक समाजवाद आदि विभिन्न दल अस्तित्व में आये । कहना न होगा कि इन समस्त राजनैतिक दलों के आविर्भाव में - जातीय भावना , प्रान्तीयता साम्प्रदायिकता ,भाषावाद आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया । और ये सभी राजनैतिक दलों में आपसी फूट, स्वार्थता, भाई भतीजावाद आदि संकीर्ण तत्वों के कारण परस्पर टकराहट हो रही है । एक दूसरे पर कीचड़ उछालने पर लगे हैं । प्रत्येक दल आरक्षण, नारी स्वतंत्रता, निम्न वर्ग का उद्धार, किसान मजदूर व श्रमिकों का हितैषी बनकर अपनी गोटी बिठाने में लगा है । परिणामत: देश का प्रत्येक पक्ष इस दलगत भ्रष्ट राजनीति से प्रभावित हो रहा है । फलत: राजनीति में आदर्श चेतना ह्रासोन्मुख हो रही है । इसके स्थान पर उठा - पटक की व्यावहारिक चेतना का साम्राज्य स्थापित हो चुका है । राजनैतिक संघर्ष के इस अवसर पर आदर्श एवं नैतिक मूल्य धराशाही होते जा रहे हैं ।

<गणतंत्रीय व्यवस्था के अनुसार चुनाव प्रणाली ने भारतीय जनता को को वोटडालकर अपना नेता चुनने और अपना तथा देश का निर्माण कराने का अवसर दिया । समय समय पर जनता ने अपने विवेक का परिचय भी दिया । 1977 में आपात् स्थिति के दौरान हुई

राजनैतिक मनमानियों के विरूद्ध क्रोध व्यक्त करते हुए जनता ने कांग्रेस पार्टी को सत्ता रहित कर नवगठित "जनता पार्टी" को सत्ता सौंपी । लेकिन यह पार्टी के आपसी मतभेदों, सत्ता लिप्सा, फूट , स्वार्थान्धता के कारण टूटती चली गई और जनता ने फिर एक बार अपने विवेक को जागृत कर अपनी सामर्थ्य का परिचय दे कर पुनः कांग्रेस को सत्ता में ले आई । "1979 में, आज स्थितियां कुछ से कुछ हो गई हैं । जनता पूरे चौकन्नेपन के साथ अपने विवेक को जगाये बैठी है ।"[1] इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि चुनाव प्रणाली ने जन जीवन में जागृति, अहम् भाव एवं अधिकार बोध को जगाकर वैयक्तिक चेतना को बढ़ावा दिया है। चुनाव प्रणाली का उद्देश्य ही यही है कि जनता को अपना नेता चुनने का अवसर प्रदान करना । पर भारत देश में जहां की अधिकांश जनता अशिक्षित एवं गरीब है अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं कर पाती । नेता पांच-पांच रूपये, एक शराब की बोतल अथवा एक कम्बल में भारत की बागडोर खरीद कर लेते हैं । नेतागण चुनावों के समय पर जनता को "गरीबी हटाओ", "काम दिलाओ" आदि झूठे आश्वासन देकर भोली भाली जनता को बहकाकर चुनाव जीत लेते हैं । और कुर्सी प्राप्त कर लेने के बाद देश व जनता को ताक पर रख व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएं पूरी करने में लग जाता है । समकालीन नेता ने धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र, आदि दुर्बल प्रवृत्तियों को मोहरे बनाकर राजनीति को दांव पेचों का अखाड़ा बना रखा है । लोकतांत्रिक देश का नेता गुण्डागर्दी, भ्रष्टाचार, धन व बल के आधार पर चुनाव जीतकर प्रतिनिधि बन गरीब जनता का शोषण करता है । इस प्रकार दलगत नीति पर आधारित

1- धर्मयुग (1979) सं0 धर्मवीर भारती - हरिन्द्र दूबे-

लोलुपता और भ्रष्टाचार जैसी दुष्प्रवृत्तियों के कारण ये योजनाएं अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ रहीं । कुछ योजनाएं केवल कागजी बन कर रहगईं । आर्थिक विषमता की इन परिस्थितियों ने आदर्श वैयक्तिक चेतना को ह्रासोन्मुख कर यथार्थ व भौतिक चेतना की ओर उन्मुख किया । "धन की सत्ता" ने अपने {अर्थ} को ईश्वर के स्थान पर प्रतिष्ठित कर व्यक्ति को अपना का दास बना दिया है । इसलिए आज का व्यक्ति पैसे को मानवता से भी उच्च मान बैठा है । वह धन के वशीभूत हुआ उसमे ही सब संबंधी नातों को देख परख रहा है । इस अर्थमय व्यक्ति की मन:स्थितियों, संवेदनाओं और सहअनुभूतियों को आलोच्य कालीन नाटक बखूबीअभिव्यक्ति प्रदान कर रहा है । अर्थ से केन्द्रभूत हुए उसके कार्यकलापों को उजागर कर रहा है । अर्थाभाव से बिखरे रेशे-रेशे हुए व्यक्ति का चित्रण घरौंदा, आधे-अधूरे , रूपया तुम्हें खा गया , एक और अभिमन्यु, आदि नाटकों में किया गया है । "भस्मासुर अभी जिन्दा है" नाटक में लालमणि कहता है - " पैसे पर ही तो मुझे भरोसा था । आज पैसा ही तो राजा है । जिसको चाहो खरीद लो ।"[1] आधुनिक अर्थ व्यवस्था ने सत्ता को खरीदा है जनता को खरीदा है और अब देश की कानून व्यवस्था को भी खरीद रही है । "अत:किम्" नाटक में तस्कर वीरेन पैसे के बल पर खरीदी हुई पुलिस को सम्बोधित कर, कहता है -" वीरेन {हंसता है} पुलिस । .... {मुट्ठी दिखलाता हुआ} इसमें, इसमें बंद है पुलिस । भाभी, पुलिस के सात पुश्त की मजाल कि वह मेरी पीठ पर हाथ रक्खे ..... उसका महावार बंधा हुआ

1- भस्मासुर अभी जिन्दा है - डा0 चन्द्र - पृ0-29

है । भाभी तुम सचमुच औरत हो .... ¶हंसता है¶"[1] समकालीन आर्थिक परिवेश में "धन" का ऐसा डंका बज रहा है जिसके आगे लोकतंत्र नाच रहा है और नेता घुटने टेक स्तुतिगान गा रहा है । नेता अपनी नीतियों को रूपयों की थैलियों पर न्योछावर कर रहा है । पूंजीपति अपने लाभ के लिए नेताओं को खरीद रहा है । "भस्मासुर अभी जिन्दा है" नाटक में सेठ मलूकदास और धूर्त नेता लालमणि के संवाद इस तथ्य को उजागर करते हैं :-

मलूकदास -" यदि जंगल का ठेका मिल जाये तो कुछ फायदा हो सकता है । अब ठका मिलने का समय भी आ गया है ।
लालमणि -"¶सोचते हुए¶ जंगल का ठेका ।
मलूकदास -"हां" ।
लालमणि - "पर इसके लिए तो वन विभाग के मिनिस्टर को पटना होगा, और वह एक लाख से कम क्या लेगा ?"[2]

आधुनिक युग की भ्रष्टाचार से लिपटी अर्थनीति ने नौकरशाही वर्ग को भी प्रभावित किया है । "मिस्टर अभिमन्यु" नाटक में आर्थिक कुचक्र व बाह्यसुरक्षा में फंसे आधुनिक अभिमन्यु राजन् के माध्यम से इस तथ्य को उद्घाटित किया गया है ।

¶5¶ औद्योगीकरण तथा वर्ग चेतना :-

जैसाकि विवेचन किया जा चुका है कि स्वतंत्र भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से लघु व कुटीर उद्योग धंधों को विकसित कर

1- अत: किम् - राधा कृष्ण सहाय - पृ0- 7।
2- भस्मासुर अभी जिन्दा है - डा0 चन्द्र - पृ0-30

गांवों की आर्थिक दशा को सुधारा गया । साथ ही साथ शहरों व कस्बों में बड़े बड़े उद्योग धंधा की स्थापना कर देश को आर्थिक रूप से उन्नत बनाने का प्रयास किया । कहना न होगा कि अर्थ प्रक्रिया से प्रत्येक युग की वैयक्तिक चेतना, सामाजिक ,राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन प्रभावित होता है । क्योंकि उनके विकास एवं उन्नति का मूलाधार "अर्थ" ही होता है । जब कभी आर्थिक असंतुलन विभिन्न विषमताओं से जुड़ जाता है तब सामाजिक संघर्ष तथा क्रान्ति का दौर प्रारम्भ होता है । अंग्रेजों के साथ भारत आई इस औद्योगिक क्रान्ति ने देश की कृषि प्रधान अर्थ व्यवस्था को सर्वाधिक प्रभावित किया । यह सत्य है कि औद्योगिक विकास ने देश को उन्नति में महत्वपूर्ण योग दान दिया है, परन्तु यह भी सत्य है कि इस प्रक्रिया ने विभिन्न असंगतियों, विद्रूपताओं तथा जटिलताओं की सृष्टि भी की है । कल-कारखानों ने अमीर और गरीब की खाई को और अधिक चौड़ा किया है । पूंजीपति अधिकाधिक धनवान बनते गये और मजदूरों की स्थिति दयनीय होती चली गई । इसी "अर्थ" को केन्द्र बिन्दु कर परस्पर देश, समाज,परिवार और व्यक्ति टकराते आये हैं और टकरा रहे हैं और ज्यों ज्यों औद्योगीकरण की प्रक्रिया तीव्र होती जा रही है त्यों त्यों संघर्ष की स्थिति भी बढ़ती जा रही है ।

पूर्व पृष्ठों में स्पष्ट किया जा चुका है कि शहरों में उद्योग धंधों का विकास होने के कारण गांव के निर्धन किसान, खेतिहर मजदूर तथा अशिक्षित व शिक्षित युवक शहरों की और दौड़ने लगे । कृषि का अपेक्षाकृत कम विकसित होना तथा जनसंख्या की निरन्तर वद्धि के कारण जमीन का संकुचित हो जाने के कारण किसान परिवार का भरण-

पोषण दुष्कर हो गया । फलत: किसान घर-खेत, छोड़ शहरों में दो लून रोटी पाने की आशा से आने लगे और कारखानों, फैक्ट्रियों में मजदूर व श्रमिकों की संज्ञा प्राप्त करने लगे । आवास समस्या बढ़ जाने के कारण ये मजदूर रेल के पुलों व फुटपाथों पर रहने को विवश हुए । इधर मिल मालिक अधिकाधिक लाभ के लालच में मजदूरों को उनके अधिकारों - जैसे बोनस, चिकित्सा व आवास की सुविधा से वंचित करने लगे । इस अधिकार बोध की भावना ने मालिक -मजदूर के संघर्ष को और भी अधिक तीव्र कर दिया है । आज शहरों में व्यक्ति वर्ण से नहीं अपितु वर्ग से पहचाना जाता है । जो जितना धनी व्यक्ति है वह उतने ही अभिजात्य वर्ग का माना जाता है । इस प्रकार आधुनिक समाज - उच्च वर्ग, मध्यमवर्ग, निम्न वर्ग में बंट गया है और इसमें भी इसकी कई छोटी छोटी श्रेणियां - जैसे अफसर वर्ग, बाबू वर्ग, चपरासी वर्ग, मजदूर वर्ग, श्रमिक वर्ग आदि । वास्तव में आधुनिक आर्थिक व्यवस्था तथा औद्योगिक विकास ने सामाजिक संदर्भों में अन्य अनेक जटिलताओं और समस्याओं को उभार कर व्यक्ति के समक्ष रख दिया है । आधुनिक व्यक्ति के संबंध पारिवारिक सामाजिक आधार पर नहीं अपितु "अर्थ" के आधार पर बन और बिगड़ रहे हैं । सामाजिक रीति-रिवाज, रूढ़ियां ,प्रथाएं धारणायें, भी इसके प्रभाव से अछूती नहीं रह सकी हैं । और साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में औद्योगिकरण के द्वारा विभाजित हुए और संघर्ष शील समाज का चित्रण किया गया है । समकालीन समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता व वर्ग संघर्ष का अनावरण करने वाले नाटकों में - वाह रे इन्सान, घरौंदा, रात रानी, तेन्दुआ ,तीन दिन तीन घर, तू-तू, आदि प्रमुख हैं । नाटक "रातरानी" में नाटककार ने मिल-मालिक जयदेव

व मजदूरों के बीच संघर्ष को चित्रित किया है -

> दूसरा व्यक्ति -" ऐसे मालिक को कोई क्या कहे ।
> तीसरा व्यक्ति-" हम भूखें मरें .... और ये प्रेस में ताला डालकर खुद होटल-हमेवली में रंगरलियां करें ।
> चौथा व्यक्ति - हमसे पूछा तक नहीं कि हमारी मुसीबत क्या हैं .... हमारी मांगों की तो बात ही दरकिनार है ।"[1]

औद्योगीकरण से विकसित हो रही आर्थिक विषमता वर्ग संघर्ष को निरन्तर बढ़ावा दे रही है । समाज में ऐसे व्यक्ति भी लाखों की संख्या में भरे पड़े हैं जिनको भरपेट रोटी नसीब नहीं होती और घी दूध तो कल्पना की वस्तु बन गयी हैं लेकिन इसी समाज में कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो कुत्ते-बिल्लियों के जन्म दिन को धूमधाम से मनाते हैं -- "तू-तू" नाटक में इसी आर्थिक विषमता को उद्घाटित करते हुए कहा है -" चाचा -" तुम ठीक कहते हो । जनता तो खुश है । देशभर में अपने निकट रिश्तेदारों और फर्मा-बरदारों के यहां इनविटेशन कार्ड भेज दो । कहो, चाचा जी अपनी एक बिल्ली के जन्म दिन के शुभ अवसर पर एक कॉकटेल पार्टी दे रहे हैं ।"[2]

वर्ग संघर्ष की इस विकटपरिस्थिति में सबसे अधिक भयावह स्थिति मध्यम वर्ग की है जो अपने झूठे दम्भ और बाह्य दिखावे के कारण दोहरी जिन्दगी जी रहा है । सीमित साधनों में न तो वह उच्च वर्ग के समकक्ष पहुंच पाता है और सफेदपोश बना वह न ही निम्न वर्ग में सम्मिलित हो पाता है । "घरौंदा" नाटक में अपनी

1- रात रानी - डा0 लक्ष्मी नारायण लाल - पृ0-60

2- तू- तू - आ0 सदाशिव - पृ0- 52

विडम्बनापूर्ण स्थिति से त्रस्त छाया क्रोध व दुख से कहती है - "भाड़ में गये उनके संस्कार । अब तो उनका संस्कार हीन होना ही अच्छा है । हमने क्या पा लिया ? किस काम के रहे हम ? न इधर के, न उधर के । सफेद कपड़े पहनने के बावजूद उस समाज के नियामकों को हम स्वीकार नहीं । मजदूरों से कम तनख्वाह पाकर भी मजदूर कहलाने से नाक भौं सिकोड़ने वाले हम ... त्रिशंकु की संतान हैं .... त्रिशंकु की संतान हैं ।"[1]

जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है कि समसामयिक जीवन में बढ़ते जा रहे अर्थ असन्तुलन से आम व्यक्ति संत्रस्त है किन्तु स्वअस्तित्व बोध, शिक्षा तथा स्वाभिमान की भावना ने व्यक्ति को इस विषमता के प्रति संघर्ष के लिए प्रेरित किया है । समकालीन युग का मजदूर मालिक द्वारा किये गये अत्याचारों को कर्मों का फल नहीं मानता वह निरन्तर अपने अधिकारों के लिए आवाज बुलन्द कर रहा है । "दरिन्दे" नाटक में निम्न वर्ग के प्रतीक शेर, भालू और लोमड़ी आदि जानवर समाज में सम्मानपूर्वक जीने का हक मांगते हुए कहते हैं -"शेर, तो मांग-पत्र तैयार करें । {शेर लोमड़ी को चौकी के इर्दगिर्द घूमता मांग पत्र लिखाता है । लोमड़ी उसके पीछे पीछे चलती मांग पत्र लिखने का मूकभिनय करती है }

जानवर और इनसान की जीने का बराबर का हक है । वे सारे काम बन्द किये जायें जिनसे जानवरों की सेहत और जिन्दगी पर बुरा असर पड़ता है । जंगल काटने बंद किये जायें हवा का दूषण रोका जाये । जानवरों के लिए अच्छे और सस्ते मकान बनाये जायें ।

1- दरिन्दे - हमीदुल्लाह - पृ0-23

उन्हें पहनने के लिए कपड़े दिये जायें । भोजन की पर्याप्त व्यवस्था हो। समाजवाद का प्रसार नेताओं की तरह जानवरों में भी किया जाये जिससे उनका घर बने, वे फलें-फूलें और समाज में उनकी इज्जत बढ़े ।"[1] वाह रे इन्सान नाटक में कान्ति अपने मजदूर भाइयों का प्रतिनिधि बन अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करता है । "..... मैंने जिन्दगी में भूखों को बिलबिलाते हुए देखा है , लाचारों को लड़खड़ाते हुए देखा है, बेकसूर और बेसहारों को बरबाद होते हुए देखा है । और यह सब कुछ देखते हुए भी जब मैं कुछ नहीं कर सका तो मैंने एक अजम कर लिया था प्रोफैसर, कि मैं अपनी पूरी आवाज से चिल्लाऊँगा दुनिया को झंझोड़े दूंगा - आगे बढ़ो । आगे बढ़ों । और तोड़ डालो इन जुल्म की जंजीरों को ।"[2] इसीप्रकार "भस्मासुर अभी जिन्दा है" नाटक में तेजबहादुर भ्रष्ट नेता लालमणि से कहता है -" मैं अपनी सीमा में ही हूं । शोषण का विरोध करने का अधिकार सभी को है । शोषण किसी का भी नहीं होना चाहिये ।"[3] वैयक्तिक चेतना से प्रभावित आज का निम्न वर्ग विशेष रूप से युवा व शिक्षित निम्न वर्ग स्वअस्तित्व बोध के आधार पर स्वाभिमान को पहचान चुका है । इसलिए वह अपने को किसी से तिनक भी छोटा या तुच्छ मानने को तैयार नहीं । वह सबसे बराबरी का दर्जा चाहता है । "रात रानी" नाटक में मिल-मालिक जयदेव अपने अहम् भाव के कारण मजदूरों से ढंग से बात नहीं करता और न ही उनकी मांगों पर उचित

1- दरिन्दे - हमीदुल्लाह - पृ0- 23

2- वाह रे इन्सान - रमेश मेहता - पृ0-22

3- भस्मासुर अभी जिन्दा है - डा0 चन्द्र - पृ0-20

ध्यान देता है । तो मजदूर संगठित हो उसके घर का घेराव कर लेते हैं । उस समय मालिक मजदूर के बीच हुए निम्न संवाद समकालीन मजदूर की वैयक्तिक चेतना पर प्रकाश डालते हैं -

जयदेव ﴾ अपनी पत्नी से कहता है ﴿ - तो तुम्हीं बात करो इन बदतमीजों से ।

पहला व्यक्ति ﴾मजदूर﴿ "मालिकन इन्हें मना कीजिये ••• ये अपनी जबान संभालकर बातें किया करें नहीं तो।"

दूसरा व्यक्ति - हर बात में इनके मुंह से गाली निकलती है ।

तीसरा और चौथा : ﴾एक संग﴿ अब हम कतई बर्दाश्त नहीं करेंगे ।।

﴾जयदेव धीरे से भीतर जाने लगता है ﴿

सारे व्यक्ति - नहीं- नहीं ••• आप भीतर नहीं जा सकते । हम आप से बात करने आये हैं ।

आधुनिक युग का मजदूर "अत्याचार" को बर्दाश्त न करने की घोषणा कर चुका है । इसलिए वर्ग संघर्ष और भी तीव्र होता जा रहा है । मजदूर अपनी मांगों के समर्थन में घेराव, तालाबंदी, हड़ताल, लूटमार आदि का सहारा ले रहा है जिसने मालिक -मजदूर के बीच की दीवार में एक और मोटी तह लगा दी है । इसप्रकार स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगीकरण ने यद्यपि देश के विकास तथा अर्थोपार्जन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है तथापि इस सत्य से आंखें नहीं मूंदी जा सकती कि इसमें वर्ग विषमता को तो बढ़ाया ही है साथ ही मशीनों के आगमन ने श्रमिकों मजदूरों के पेट पर लात भी मारीहै । जैसे-तैसे मजदूरी कर परिवार का भरण पोषण करने वाला मजदूर बेकार हो गया । उधर शिक्षा का प्रचार बढ़ जाने से शिक्षित बेरोजगारों की संख्याभी बढ़ती जा रही है जिसने देश की विभिन्न समस्याओं

की कड़ी में एक और समस्या को विकट रूप से उभारा है - वह है बेरोजगारी की समस्या । निर्धनता व मंहगाई की कालिमा से आच्छादित इस वातावरण में बेरोज़गारी ने व्यक्ति की आशाओं पर तुषार पात किया है । इसीलिए समकालीन व्यक्ति अत्याधिक तनावग्रस्त होकर दिशाहीन भटक रहा है ।

बेरोज़गारी , निर्धनता व मंहगाई से बिखरती चेतना :-
****

जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है कि स्वाधीन भारत में जिस राम राज्य की कल्पना भारतीय जनता व नेताओं ने की थी, वह मात्र कल्पना ही बन कर रह गई । देश की अन्तर्बाह्य परिस्थितियों ने समस्याओं को और अधिक विकट बना दिया । देश की आर्थिक सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के जो पंचवर्षीय योजनायें प्रारम्भ की गई थीं, उनसे भी अपेक्षित लाभ न मिल सका । जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज में मंहगाई, बेकारी और निर्धनता अमर बेल की तरह फलती फूलती रही । शिक्षित युवक आर्थिक रूप से टूटे हुए नौकरी की तलाश में दर-दर भटकने लगे । समाज में व्याप्त भाई-भतीजावाद , जातिवाद, क्षेत्रवाद ,स्वार्थपरकता और रिश्वतखोरी ने उनकी नैतिकता को धराशायी कर दिया । आदर्श व नैतिकता के तटबंधनों को तोड़ती हुई उनके नैराश्य मिश्रित क्रोध की धारा समाज व देश को विध्वस कर रही है । देश की राजनीति भी आदर्श व नैतिकता विहीन होकर स्वार्थान्धता के सीमित दायरों में सिमट आई है जिसने युवा पीढ़ी के समक्ष न तो कोई आदर्श छोड़ा है और न ही उसे सही मार्ग दर्शन करने का प्रयास ही किया है ।

पूर्व विवेचन से स्पष्ट हकया जा चुका है कि अँग्रेज़ों ने भारत को आर्थिक रूप से इतना जर्जर बना दिया था कि जिसकी क्षति पूर्ति वह अभी तक नहीं कर पाया है । फिर, पं० नेहरू की नीति, जिन्होंने कुटीर उद्योग धंधों की अपेक्षा बड़े बड़े कारखानों की स्थापना पर बल दिया जिसमें ग्रामीण ,कृषक मजदूर व कारीगरों के व्यवसाय को धक्का लगा । प्रकृति प्रकोप तथा अच्छे बीज व खाद की कमी के कारण किसान परिवार की कृषि से गुजर बसर करना कठिन हो चला था । इसके अतिरिक्त बढ़ती जनसंख्या और घटती जमीन के कारण खेतों की हरियाली बंजर होती चली गयी । इन्हहीं सब कारणों से किसान विवश हो शहरों की ओर उन्मुख हुआ । गांव बूढ़े-बड़ों का बसेरा मात्र रह गये । शिक्षित व अशिक्षित युवक सुनहरे स्वप्न लिए शहरों की चकाचौंध में खोते चले गये ।

औद्योगिक क्रान्ति ने देश में वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाया है लेकिन जमाखोरी, काला बाजारी तथा मुनाफाखारी जैसी नागिन प्रवृत्तियाँ आवश्यक वस्तुओं को निगलती जा रही हैं । समाज में वस्तुओं का कृत्रिम अभाव उत्पन्न हो रहा है । कीमतें बढ़ रही हैं । भ्रष्टाचार बढ़ रहा है । साथ ही बेकारी व निर्धनता भी । समाज में व्याप्त इस चतुर्मुखी राहू ने आम व्यक्ति की आशाओं के चन्द्रमा को ग्रस लिया है । और इस "ग्रहण" का असर प्रेम, भाईचारे,अतिथि सत्कार, पारिवारिक संबंध , सेवाभाव, ईमानदारी, उत्सव-त्यौहार आदि पर दृष्टिगोचर हो रहा है । प्रेम और विश्वास के अभाव में युवा वर्ग में विद्रोही, तनावग्रस्त व कुंठित प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है । जिस पीढ़ी को देश का भविष्य बनाना है , वह भुलावे में आकर उस देश के वर्तमान को ही नष्ट कर रही है । तोड़-फोड़, आगजनी,हड़ताल

लूटमार का सहारा लेकर अपना भविष्य संवरने का झूठा सपना देख रही है । लेकिन ये प्रवृत्तियाँ और अधिक मँहगाई व निर्धनता को बुलावा देती हैं । यह तथ्य युवा वर्ग जानते हुए भी नहीं जानता । समकालीन समाज में तैनात अनेकानेक जटिलताओं, विसंगतियों तथा विद्रूपताओं से संघर्षरत व्यक्ति की टूटन, घुटन तथा जय पराजय का चित्रण आलोच्य कालीन नाटकों में भी यथातथ्य और मार्मिक चित्रण हुआ है । त्रिशंकु , एक और अभिमन्यु , विरोध, आधे-अधूरे, भूमि की ओर आदि अनेक नाटकों में हुआ है ।

§7§ भौतिकता के प्रति बढ़ता आकर्षण :-

पूर्ववर्त्ती अध्यायों में यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि बढ़ते विज्ञान, औद्योगिक विकास तथा शिक्षा के कारण व्यक्ति का सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक मूल्यों के प्रति रूझान कम होता जा रहा है । आधुनिक व्यक्ति वैज्ञानिक अविष्कारों द्वारा नित नयी, सुविधाजनक वस्तुओं को अपने बीच देख रहा है जो उसे सुख-सुविधा देने में समर्थ हैं । इसलिए व्यक्ति आज मशीनों का गुलाम हो गया है । उसे अब व्यक्ति की नहीं अपितु मशीनों की आवश्यकता अनुभव कर रहा है । इसलिए समकालीन व्यक्ति समाज से कटा-फटा और अपने में सिमटा हुआ "स्व" व अहम् भाव से ग्रस्त होता जा रहा है । वास्तव में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक तकनीकी विकास ने जीवन की सुख सुविधाएं प्रस्तुत कर, परम्परागत जीवन-मूल्यों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया है। समाज भौतिकता की दौड़ इतनी तेज हो गई है कि प्रत्येक व्यक्ति अल्प समय में ही सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहता है । संयम व सन्तोष की घटती प्रवृत्ति ने इस दौड़ को

और अधिक भयावह बना दिया है । सभी इसमें बदहवास से दौड़ते गिरते, उठते दिखाई दे रहे हैं । उच्च वर्ग व निम्न गर्व तो अपने अपने सांचों में "फिट" हैं, लेकिन मध्यम वर्ग न तो उच्च वर्ग में सम्मिलित है और न ही निम्न वर्ग में । वह सफेद पोश बना निम्नवर्गीय जीवन से, भी बदत्तर जिन्दगी जीने को विवश हो रहा है । यही वह वर्ग है जो अत्यधिक जागरूक होने के कारण सर्वाधिक संवेदनशील है ।यही कारण है कि उसकी संवेदनाओं की अनुभूतियों, मान्यताओं के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। साठोत्तर हिन्दी नाटक भौतिकता के आकर्षण में डूबे हुए आधुनिक व्यक्ति की स्थिति का यथा तथ्य चित्रण कर रहा है । अत: किम् (राधाकृष्ण सहाय) एक और अजनबी (मृदुला गर्ग) "देवयानी का कहना है" (रमेश बक्षी) कुत्ते (सुरेश चन्द्र शुक्ल "चन्द्र") "मिस्टर अभिमन्यु (डा० लक्ष्मीनारायण लाल) वामाचार (रमेश बक्षी) दरिन्दे ,उत्तर उर्वशी (हमीदुल्लाह) आदि नाटकों में भौतिकता के प्रति बढ़ते आग्रह को उद्घाटित किया गया है । "वाह रे इन्सान" का धन सेवक धन का सेवक बन अपनी पत्नी तक को दाव पर लगा देता है । धन के समक्ष उसे पत्नी की इज्जत, मर्यादा और उसकी चीख पुकार फीकी लगती है। वह ऐसा अवसरवादी, चापलूस व्यक्ति है जो ईमानदारी, नैतिकता तथा आदर्श को ऐशोआराम के समक्ष नगण्य मानता है । -"मन की शान्ति, आत्मा का चैन, रूह को तकसीन । क्या होता है इन बातों से जीवन की खुशियां नहीं मिलती, जिन्दगी के ऐश और आराम नहीं मिलते ।"[1] "उत्तर-उर्वशी" के मोना और उसका पति प्रकाशक धन-लाभ के लिए एक दूसरे को दाव पर लगाते हैं । प्रकाशक अपनी पत्नी मोना को इसी उद्देश्य के लिए लेखक के घर लेकर आता है जिससे वह

1- वाह रे इन्सान - रमेश मेहता - पृ0- 20

लेखक को फांस कर "कुछ रूपये" बचा सके ।"[1] आधुनिक सुख-सुविधाओं ने समकालीन व्यक्ति को इतना जकड़ लिया है कि व्यक्ति अव्यवस्था के चंगुल के निकलना चाहते हुए भी निकल नहीं पाता । उसे इस अव्यवस्था में इतनी सुरक्षा अनुभव करता है कि उससे बाहर निकलने मात्र से रोमांच होने लगता है । "मिस्टर अभिमन्यु" नाटक में नाटककार ने भौतिकता तथा आदर्श के बीच महाभारत चित्रित कर भौतिकता की जीत को उद्घाटित किया है । राजन् की पत्नी विमल , अव्यवस्था से दुखी राजन् के कमीश्नरी से त्यागपत्र देने पर कहती है -"हमने प्रेम विवाह किया है तुम मुझे अभाव में नहीं रख सकते । तुम्हारे सारे दोस्त-रिश्तेदार ऐसे हैं जिनके बच्चे केवल कान्वेन्ट में पढ़ते हैं ,जिनकी बड़ी बड़ी शादियां हुई हैं ---- ।"[2] इसी प्रकार "अत: किम्" नाटक का वीरेन तस्करी के धंधे में पर्याप्त धन कमा कर अपने ईमानदार कर्तव्यनिष्ठ चचेरे भाई मनोहर को खरीदना चाहता है , और मजबूरियों तथा आर्थिक संकट में घिरा मनोहर कुंठित होकर कुछ सीमा तक बिकने को तैयार भी हो जाता है । वीरेन भौतिकता की चका-चौंध में फीके पड़ते नैतिक मूल्यों को इंगित करके कहता है -"नैतिकता के साथ जोड़कर सब को एक साथ गडड् मड्ड कर दिया गया । मसलन भौतिक बल के अभाव में शरीर और मन बराबर कातर रहेंगे, हमने भुला दिया है । भाभी, आदमी को अपनीइच्छाओं को पल्लवती बनाना होता है,इच्छाएं अपने आप फल नहीं देती । वीर भोग्या वसुन्धरा नो रिस्क, नो गेन ।"[3] इन नाटकों के अतिरिक्त "घरौंदा"

1- उत्तर उर्वशी - हमीदुल्लाह - पृ0- 47

2- मिस्टर अभिमन्यु - डा० लाल पृ0- 23

3- अत: किम् - राधा कृष्ण सहाय - पृ0- 65-66

"वामाचार", "एक और अभिमन्यु", "राजरानी", "भस्मासुर अभी जिन्दा है, "पूर्ण विराम", कुत्ते" आदि अन्य नाटकों में भौतिकता की प्रति बढ़ते आकर्षण को चित्रित किया गया है।

समकालीन राजनीति में तीव्र होती भौतिक चेतना ने भी भौतिकता के प्रति आग्रह को विकसित किया है। आज राजनीति अत्यधिक धन कमाने का "शॉर्ट-कट" बन गयी है। "भस्मासुर अभी जिन्दा है" नाटक में छुट भैया नेता का प्रतीक भेदराम कहता है -"अब राजनीति केवल पैसे वालों के लिए रह गयी है। आज समाजवाद, पूंजीवाद के रथ पर बैठा है जिसके पास पैसा है वही चुनाव लड़ सकता है। और जीत भी पैसे वाले की ही होती है। अब तो वोट मांगने नहीं, खरीदने पड़ते हैं।"[1] "दरिंदे" नाटक में विक्षिप्त दार्शनिक अर्थ पर आधारित राजनीति और राजनीति से बढ़ती भौतिक चेतना का स्पष्टीकरण इस प्रकार देता है -"नहीं, नहीं, नहीं। सत्ता सिर्फ डॉलर्स और रूबल्स के हाथ में है। डॉलर्स और रूबल्स। रूबल्स और डॉलर्स[2] "तू-तू" भस्मासुर, एक था गधा उर्फ अल्लादाद खाँ, अंधों का हाथी, आज नहीं तो कल आदि नाटकों में सत्ता व धन का पर्याय बनी राजनीति का चित्रण किया गया है।

इस प्रकार आलोच्य कालीन नाटकों के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक व्यक्ति संतोष व संयम के धन को त्याग भौतिकता की अंधी दौड़ में सम्मिलित होगया है। उसे आज अत्यधिक धन की लालसा है। इसके लिए उसे चाहे पत्नी व सन्तान या कर्तव्य, ईमानदारी तथा प्रेम का बलिदान ही क्यों न करना पड़े। यही कारण है कि सम

1- भस्मासुर अभी जिन्दा है - डा० चन्द्र - पृ०-17
2- दरिंदे - हमीदुल्लाह - पृ०-24

सामयिक परिवेश में पारिवारिक ,सामाजिक,मान्यतायें व मूल्य चरमरा कर टूट रहे हैं । चहुं ओर घिरा आधुनिक व्यक्ति आर्थिक संकट के साथ साथ अजनबीपन, एकाकीपन, मानसिक तनाव आदि से संघर्ष कर रहा है । समाज और परिवार के संबंध अर्थ के आधार पर बन बिगड़ रहे हैं । सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के शब्दों में --

"खेतों की मेड़ों की ओस नमी मिटटी,
जितनी देर मेरे इन पैरों में लगी रही,
उतनी देर जैसे सब अपने रहे,
उतनी देर सारी दुनिया सगी रही,
किन्तु मैंने ज्यों ही मौजे जूते पहन लिये
जेल के पर्स का ख्याल आने लगा ।"[1]

निष्कर्ष :-
******x

प्रस्तुत अध्याय के समग्रत: विवेचन के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि स्वतंत्र भारत की राजनीति ने परिस्थितियों के इतने धक्के खाये कि आदर्श और नैतिकता के कोमल तन्तुओं से बुना उसका परिधान चीर चीर हो गया । राजनीति का वह छत्र जो देश को शीतल छाया प्रदान करता उन्नत बनाता, वह छितरा गया और विडम्बना यह रही कि देश के रक्षक ही भक्षक बन गये । देश के सर्वांगीण विकास के लिए नारे लगाते भ्रष्ट नेता आराम तलब और ऐयाश बनते चले गये ,उनकी योजना मात्र कागजी बनकर फाइलों के ढेर के नीचे दबी रह गयी । ऐसा नहीं कि स्वाधीन भारत की राजनीति ने देश की प्रगति में योगदान नहीं दिया बल्कि सच तो यह है कि गांव गांव तक जन जागृति व्याप्त करने का श्रेय राजनीति को ही जाता है । इसने

1- बांस का पुल {कविता} - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना-पृ0-30

ही निम्न वर्ग व अछूत वर्ग को स्वाधिकार व स्वाभिमान का पाठ पढ़ाया । नारी को स्वतंत्रता व समानता के नये आयाम प्रदान किये । संवैधानिक अधिकार व वोट प्रणाली ने आम व्यक्ति की महत्ता को स्थापित किया । लेकिन यह भारतीय जनता का दुर्भाग्य ही रहा है कि राजनीति के उज्ज्वल पक्ष की बजाय अंधकार पूर्ण ,भ्रष्ट पहलू ही उभर कर सामने आया । चुनाव प्रणाली ने दलीय नीति को बढ़ावा दिया । देश में नित नयी पार्टियां उदित होने लगी । राजनीतिज्ञों का तनिक सा वैचारिक मतभेद नयी पार्टी का कारण बनता गया ।

आधुनिक राजनीति ने साम्प्रदायिकता भाषावाद,क्षेत्रीयवाद, जातिवाद, भाई भतीजावाद आदि को बढ़ावा दिया । इन प्रवृत्तियों को नेतागण वोटप्राप्ति का माध्यम बनाने लगे । चुनाव लड़ना और जीता पूंजीपतियों का व्यवसाय बन गया । तस्करी काले धंधे ,जमाखोरी और मुनाफाखोरी राजनीति की छत्रछाया में पलने लगीं । जिससे समाज में आर्थिक विषमता का वातावरण व्याप्त हो गया। देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए जिन पंचवर्षीय योजनाओं को प्रारम्भ किया गया वे भी चारित्रिक दृढ़ता तथा नैतिकता के अभाव में पूर्णत: सफल न हो सकीं । अन्य अनेक अन्तर्बाह्य कारण भी इन योजनाओं की सफलता में बाधक सिद्ध हुए जिसका परिणाम यह हुआ कि समाज में मंहगाई,बेरोजगारी, भ्रष्टाचार,अनैतिकता ,वस्तुओं का अभाव आदि दुष्प्रवृत्तियां बलवती होने लगीं । इन समस्त प्रवृत्तियों ने आधुनिक व्यक्ति के जीवन को अनेक प्रकार की विषमताओं ,विडम्बनाओं से भर दिया ।

इस प्रकार राजनीतिक भ्रष्टाचार तथा आर्थिक असंतुलन से त्रस्त आज का व्यक्ति सामाजिक ,पारिवारिक मर्यादाओं,आदर्शों और धार्मिक व नैतिक मूल्यों के प्रति आस्थाहीन होता जा रहा है । बौद्धिक तथा वैज्ञानिकता आधार पर पुरानी जीर्ण शीर्ण परम्पराओं को त्याग तो रहा है किन्तु उनके स्थान पर स्वच्छ व स्वस्थ मूल्यों का आविर्भाव नहीं हो पाया है जिसके कारण दिशाहीनता और भटकाव की स्थिति में जी रहा है । युवा पीढ़ी सर्वाधिक इन परिस्थितियों की जटिलताओं,कुंठा,भग्नाशा, अलगाव और टूटन के संत्रास में जी रहा है जिसका प्रभाव चिन्तन व आचरण पर स्पष्टत: दृष्टिगोचर हो रहा है ।

-::-

उपसंहार

"वैयक्तिक चेतना" से प्रभावित विविध धरातलों को उद्घाटित करने वाले साठोत्तर युग के प्रमुख हिन्दी नाटकों का विश्लेषण ,विवेचन और मूल्यांकन विगत पृष्ठों में करने का प्रयास किया गया है । व्यक्ति के अस्तित्व के साथ जन्म से लेकर अद्यतन काल में विद्यमान "वैयक्तिक चेतना" की इस यात्रा के दौरान आये अनेक उतार चढ़ावों तथा संकुचित विस्तृत होते उसके स्वरूपों की चर्चा यहाँ की गई है और "वैयक्तिक चेतना" ने व्यक्ति, परिवार समाज और राष्ट्र को किस सीमा तक अपने रंग में रंग लिया है - इन तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है । इस प्रकार समग्रतया विवेचन के परिणामस्वरूप हम इन निष्कर्षात्मक बिन्दुओं पर पहुंचते हैं कि "वैयक्तिक चेतना" देश की समसामयिक अन्तबर्ह्यि परिस्थितियों से प्रभावित होती हुई व्यक्ति की मन:स्थिति,उसकी चिन्तन प्रक्रिया पर अमिट छाप छोड़ती है । यह व्यक्ति विशेष में निहित वह इच्छाशक्ति है जो उसे स्वविकास तथा अभाव पूर्ति की ओर प्रेरित करती है । इस प्रकार यह समाज विरोधी सी प्रतीत होती हुई समाज सापेक्ष होती है । क्योंकि इसी की प्रेरणा प्राप्त कर व्यक्ति, समाज को अवरूद्ध तथा बीमार बनाने वाली सड़ी-गली परम्पराओं व स्थापनाओं को नकारता है उन्हें विध्वंस करने को उद्यत होता है ।

वस्तुत: "वैयक्तिक चेतना" का स्वरूप सदैव एक सा नहीं रहता । यह देशकाल की परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित होता रहा है । "वैयक्तिक चेतना" कभी समाज सापेक्ष दृष्टिगत होती है तो कभी व्यक्ति के विकास मार्ग को प्रशस्त करने के लिए उसे समाज से पृथक् एक स्वतंत्र ईकाई के रूप में प्रतिष्ठित करती है । वह कभी व्यक्ति को परमार्थ की ओर प्रेरित करती है तो कभी स्वार्थ की ओर अग्रसर करती है । इसलिए

कहा जा सकता है कि "वैयक्तिक चेतना" बदलते परिवेश के साथ साथ अपना नया कलेवर धारण करती जा रही है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में "वैयक्तिक चेतना" का अनुशीलन आदर्श, व्यावहारिक, यथार्थ व भौतिक चेतना के आधार पर करने का प्रयास किया गया है । कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में विशेषत: साठोत्तर युग में "वैयक्तिक चेतना" "आदर्श" का मोह छोड़कर यथार्थता व भौतिकता की ओर अग्रसर हो चली है । वर्तमान युग में इसके दो मूलभूत आधार स्तम्भ बन चुके हैं - पहला "अर्थ" और दूसरा "काम" । चतुष्ट पुरूषार्थों का धर्म पर आधारित समन्वय "बीती हुई बात" बन चुका है ।पपश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण, वैज्ञानिकता, औद्योगिकता के बढ़ते चरणों ने "वैयक्तिक चेतना" को आच्छादित सा कर लिया है। इसलिए "वैयक्तिक चेतना" के पुरातन स्वरूप में परिवर्तन आना स्वाभाविक व अवश्यम्भावी हो गया । अर्थात् वह समाज सापेक्षता के विस्तृत दायरे को त्याग कर व्यक्ति मात्र में सिमटती चली गई । अब इसके समक्ष सामाजिक मूल्य, मान्यताएं नगण्य और व्यक्तिगत स्वार्थ, अहम् तुष्टि तथा स्व-अस्तित्व का भाव विराटता प्राप्त करता जा रहा है । इस प्रकार सम कालीन युग में "वैयक्तिक चेतना" "व्यक्ति वादिता" के घेरे में निबद्ध होती जा रही है । आधुनिक व्यक्ति का चिन्तन उसके कार्य कलाप और व्यवहार "अर्थ" और "काम" के बिन्दु पर घूम रहे हैं । अर्थ के लिए काम और काम के लिए अर्थ ही आधुनिक व्यक्ति का चरम लक्ष्य बन गया है । इसके इस "अर्थवादी" तथा "कामवादी" चिन्तन ने परम्परागत नैतिक व धार्मिक मूल्यों पर कुठाराघात किया है । वैज्ञानिकता के तीव्र विकास ने "यथार्थ चेतना" को विकसित कर ईश्वर की अलौकिक सत्ता, पारलौकिक भावना तथा तीर्थ स्थानों

के प्रति आस्था भावना को धमिल कर दिया है । आधुनिक व्यक्ति ने ईश्वर को तो मृत घोषित कर दिया है पर अपने को भी पूर्णत: स्थापित नहीं कर पा रहा है । "आधे-अधूरे" बना वह प्रगतिशीलता का दम्भ भरते हुए सामाजिक व नैतिक मूल्यों को त्याग रहा है, लेकिन कहीं न कहीं उनसे चिपका भी हुआ है और इस विषम ऊहापोह की स्थिति में मध्यम वर्ग सर्वाधिक पिस रहा है । त्यागने व अपनाने की दुविधा में "मिस्टर अभिमन्यु" बना हुआ है । आधुनिक जटिलताओं, विषमताओं तथा विद्रूपताओं से टूटा ,थाका-हारा व्यक्ति सुख प्राप्ति हेतु भौतिकता व शारीरिकता की ओर उन्मुख हो रहा । उसने नैतिकता के मानदण्डों को या तो तोड़ दिया है या फिर अपने अनुरूप उन्हें नई व्याख्या दे दी है । शारीरिक सुख के समक्ष पवित्रता, शील,पातिव्रत्य ब्रह्मचर्य आदि के मूल्य लड़खड़ा कर टूट रहे हैं । महानगरीय आवास समस्या तथा वैज्ञानिकता ने इस दिशा में घी का काम किया है । बढ़ती स्वच्छंद यौन वृत्ति ने जन्मजन्मांतर के वैवाहिक संबंधों को क्षण भंगुर सिद्ध कर दिया है । इस वैचारिकता से नारी भी अछूती नहीं रही । इसलिए वह स्व अस्तित्व के भाव बोध के आधार पर विवाह पूर्व शारीरिक संबंध स्थापित करने, विवाहोपरांत अन्य पुरूषों के साथ संपर्क बनाये रखने तथा पद,प्रमोशन के लालच में शरीर को माध्यम बनाने आदि को अनुचित नहीं समझती । इस प्रकार स्त्री पुरूष की इस अति बौद्धिकवादी विचारधारा ने पारिवारिक संबंधों को आलोड़ित कर दिया है । आस्था, विश्वास, प्रेम, त्याग के तीर्थस्थल परिवार अनास्था अविश्वास ,अजनबीपन तथा स्वार्थ के दूषित वातावरण में जी रहे हैं । व्यक्ति की स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति, संयुक्त परिवार, परिवार तथा दाम्पत्य जीवन को, स्व विकास में बाधक मान नकारने पर तुली है । माता-पिता

भाई-बहन के पवित्र संबंध तो बोझ बन ही चुके हैं अब पति-पत्नी के संबंध भी असहनीय होते जा रहे हैं ।

यह कहना समीचीन होगा कि नारी शिक्षा तथा आर्थिक निर्भरता ने जहां दाम्पत्य जीवन के विकास को नये आयाम मिले हैं, वहां परिवार में विघटनकारी तत्व भी तेजी से बढ़ते जा रहे हैं । आधुनिक नारी अब मूक बनी पति की मनमानी को नहीं सहती । अब वह अनुचरी नहीं अपितु सहचरी बन कर अपना दायित्व निर्वाह करना चाहती है । और जब पति का परम्परागत अहम भाव उसे स्वीकार नहीं करता तो पारिवारिक कलह व वैमनस्य के जीते जागते स्थल बन जाते हैं । जिसका प्रभाव सन्तान को भी विद्रोही बना देता है । वह भी स्वअस्तित्व व स्वतंत्रता की शब्दावली सीख कर अपना विकास करने लगते हैं । माता पिता के हस्तक्षेप को दर्शित करना वह अपना अपमान समझने लगते हैं । उनके प्रति आज्ञा-पालन ,आदर भावना आदि को दकियानूस घोषित कर देते हैं । यही कारण है कि आलोच्यकालीन युग में पुरानी व युवा पीढ़ी का संघर्ष तेजी से बढ़ता जा रहा है । जो घर, बाहर, समाज ,कालेज व अन्य संस्थाअनों में आये दिन देखने को मिल जाता है । यह सत्य है कि समय की मांग को देखते हुए आधुनिक पीढ़ी में नया आत्मबोध, आत्मविश्वास, स्वाभिमान व कुछ कर दिखाने का उत्साह उभड़ आया है किन्तु उनका यह उत्साह उचित मार्ग दर्शन के अभाव में देश निर्माण के स्थान पर विध्वंसता की ओर बढ़ गया है । स्वतंत्र भारत की भ्रष्ट होती राजनीति ने अपने स्वार्थ का मोहरा भी इसी पीढ़ी को बना रखा है ।

यह उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत ने राजनैतिक व आर्थिक क्षेत्र में व्यापक प्रगति की है । "वोट प्रणाली" ने

गांव गांव में राजनैतिक चेतना का विस्तार कर उसे आम जनता से जोड़ दिया है\। व्यक्ति को उसके महत्व से परिचित कराया है । पर कुल मिलाकर नतीजा - वही "ढाक के तीन"पात" रहा । स्वार्थान्धता तथा अपने तक सीमित वैयक्तिक चेतना ने इस क्षेत्र को भी गंदला कर दिया है । परिणामतः देश व समाज हित पीछे रह गया और स्व उदर पूर्ति का भाव निरन्तर "रेस" जीतता जा रहा है। राष्ट्र को कमजोर बनाने वाले - साम्प्रदायिकता, भाषावाद, क्षेत्रवाद,आदि तत्व राजनीति में प्रश्रय पा रहे हैं - फलफूल रहे हैं । समकालीन परिवेश में "वैयक्तिक चेतना" पर आधारित मजदूर वर्ग व निम्न वर्ग में जो "अधिकार बोध" की चेतना जागृत हुई है वह भी भ्रष्ट राजनीति में - हड़ताल, तालाबंदी, घेराव - आदि के रूप में प्रयुक्त हो रही है ।

सातवें- आठवें दशक के हिन्दी नाटक "वैयक्तिक चेतना" के इस परिवर्तित स्वरूप का सम्यक् रूप से दिक् दर्शन कराते हैं । ये नाटक कहीं त्रस्त ,टूटे ,पराजित व्यक्ति की संवेदना को वाणी देते हैं, तो कहीं उसकी वैयक्तिक चेतना" के आलोक में तिरोहित हो रही रूढ़ मान्यताओं व जीर्ण परम्पराओं तथा सड़ी गली स्थापनाओं का चित्रण करते हैं । अपनी पहचान §सुदर्शन चौपड़ा§ चारपाई §रामेश्वर प्रेम अमृत पुत्र §सत्यव्रत सिन्हा§ देवयानी का कहना है §रमेश बक्षी§ लोटन §विपिन कुमार अग्रवाल§ आदि नाटक व्यक्ति के अस्तित्व को तलाशते नजर आते हैं । बिना दीवारों के घर §मन्नू भण्डारी§ टगर §विष्णु प्रभाकर§ एक और अजनबी §मृदुला गर्ग§ आधेअधूरे §मोहन राकेश§ उत्तर-उर्वशी §हमीदुल्ला§ तिलचट्टा §मुद्राराक्षस§ देवयानी का कहना है §रमेश बक्षी§ व्यक्तिगत §डा० लक्ष्मीनारायण लाल§ नरमेध §गिरिराज किशोर§ चिराग की लौ §रेवती सरन शर्मा§ सादर आपका §दयाप्रकाश

सिन्हा§ सूर्य की अन्तिम किरण से पहली किरण तक §सुरेन्द्र वर्मा§ आदि कई नाटक स्त्री-पुरूषों तथा पति-पत्नी के संबंधों की चीड़-फाड़ करते हैं । आधुनिक नाटककार समकालीन राजनैतिक भ्रष्टाचार पर मौन नहीं " बकरी §सर्वेश्वर दयाल सक्सेना§ तू-तू §आस्थानन्द सदासिंह§ आज नहीं तो कल § सुशील कुमार सिंह§ राम की लड़ाई § डा0लक्ष्मी नारायण लाल§ सम्भवामि युगे-युगे §जी0जे0हरिजीत§ भस्मासुर §राम कुमार भ्रमर§ शुतुरमुर्ग § ज्ञानदेव अग्निहोत्री§ खेला पोलमपुर §मणि मधुकर§ - जैसे अन्य अनेक नाटक राजनैतिक भ्रष्टाचार, सत्ता प्राप्ति की आपा धापी को उजागर करते हैं । आलोच्य कालीन नाट्यकृतियों का विवेचन करते समय हमारे समक्ष यह तथ्य उभर कर आया कि सन् 1960 से 1970 के मध्य जिन नाट्य कृतियों का सृजन हुआ उनमें वैयक्तिक चेतना आदर्शोन्मुखी है । या पात्रों के माध्यम से आदर्श व यथार्थ का द्वंद्व चित्रित किया है अर्थात् उस समय तक समाज में आदर्श के प्रति मोह बना हुआ था । व्यक्ति पूरी तरह से भौतिकवादी नहीं हो पाया था । जैसे रात-रानी §डा0 लक्ष्मी नारायण लाल§, चिराग की लौ §रेवती सरन शर्मा § अपनी कमाई §राजेन्द्र शर्मा§ रूपया तुम्हें खा गया §भगवती चरण वर्मा§ आदि नाटक §आदर्श चेतना" को स्थापित करते हैं किन्तु सन् 1970 के पश्चात् लिखे गये अधिकांशतः नाटक अर्थ व काम को केन्द्र बनाकर चले हैं । इन नाटकों में भौतिक चेतना व यथार्थ चेतना प्रभुत्व दृष्टिगोचर होता है । ऐसे नाटकों की संख्या अधिक है । कहने का तात्पर्य यह नहीं कि इस दौरान आदर्श चेतना लुप्त हो गई या उसके प्रति मोह नहीं रहा, अपितु वास्तविकता तो यह है कि ऐसे दूषित वातावरण में आदर्श चेतना अपने को अपमानित अनुभव कर स्वंय ही किसी कोने में सिमट सी गई है जो अनुकूल वातावरण पाकर पुनः स्थापित होकर रहेगी ।

यह कटु सत्य है कि समकालीन परिवेश में सामाजिक ,आर्थिक और राजनैतिक सभी पक्ष अपना नैतिक दायित्व भूलते जा रहे हैं । भ्रष्ट राजनीति में कहीं "आदर्श" जिन्दा जलाये जा रहे हैं तो कहीं शारीरिक सुख के आधार पर "शीलवती" पुन: पुन: धर्म नटी बन रही हैं और कहीं "सावित्री" पति को त्याग पूर्णता की तलाश में अनेक पुरूषों से सम्पर्क बना रही है । आज का साहित्यकार भी "यथार्थ" के नाम पर समाज की नंगी व भौंडी तस्वीर चित्रित करने में अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ बैठा है । चूंकि आज का व्यक्ति असंतुष्ट है उसकी "वैयक्तिक चेतना" असन्तुष्ट है इसलिए आधुनिक नाटक भी असन्तुष्ट हो उठा है । किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि साहित्य की परम्परा सदैव विकासोन्मुख रही है । इस संकुचित होती मनोवृत्ति में भी व्यक्ति अपने लक्ष्य व कर्तव्य को पहचान कर पुन: समाज निर्माण व राष्ट्रहित के कार्यों में संलग्न होगा और "वैयक्तिक चेतना" अपने विस्तृत रूप को अपनाकर अपनी पवित्र धारा से व्यक्ति की मनोभूमि को सिंचित कर स्वस्थ व सुन्दर चिन्तन के पुष्प खिलायेगी ..... ।

----:::::::--